भाव-विभूति

जिनका प्रत्येक भाव आनन्दमय, आनन्द ही जिनका उपादान, आनन्द ही में हो जिनकी स्थिति, जिन्होंने जगत् में आनन्द-लीला के लिए आनन्द का ही मूर्तिमय रूप धारण किया है, उनमें प्राणीमात्र के मङ्गल के लिए बहुत प्रकार की उत्पत्ति, स्थिति और लय होना नितान्त स्वाभाविक है। एकाग्रचित्त से देखने पर माँ के दो रूप दृष्टिगत होते हैं—एक उनका बाह्य रूप और दूसरा अन्तर का रूप, इन दोनों रूपों का लीला-विलास सदा ही उनमें प्रकाशित है।

आरम्भ से ही ढाका आने पर माँ अधिकांश समय लेटी ही रहती थीं। हम सुना करते थे कि माँ अकथनीय महाभाव की स्थिति में कभी-कभी सारा दिन पड़ी रहती थीं, कीर्तनादि के समय उनकी लीला विशेष रूप से उपस्थित जनसमूह में प्रकाश पाती थी।

बङ्गला सं० १३३२ (१९२६ ई०) में शाहबाग में उत्तरायण संक्रान्ति के उपलक्ष्य में कीर्तन हुआ। यही माँ का सर्वप्रथम प्रकट कीर्तन था। उस समय चटगाँव से श्रीयुत शशिभूषण दासगुप्त ढाका आये। वह वहाँ पहुँचते न पहुँचते ही माँ को देख भक्ति-श्रद्धा से विभोर हो उठे। खूब जनसमुदाय इकट्ठा था, वे दूर से माँ का दर्शन कर रहे थे और अश्रुविमोचन हो रहा था। उन्होंने रोते हुए मुझसे कहा, "जीवन में जो नहीं देखा था वह आज देख लिया, विश्वजननी के साक्षात् दर्शन हुए।" प्रायः १०

बजे कीर्तन प्रारम्भ हुआ। माँ बैठी हुई स्त्रियों को सिन्दूर दे रही थीं, सहसा उनके हाथ से सिन्दूर की डिबिया गिर गयी। शरीर जमीन पर गिर पड़ा। कुछ देर में जमीन पर से उठ पैर के अँगूठे के बल खड़ी हो दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठा और सिर को पीछे की ओर ले जाकर स्थिर तथा अपलक दृष्टि से ऊपर देखने लगीं। बाद में माँ इस अवस्था में चलने लगीं। न जाने किस दिव्य भाव से परिपूर्ण थीं। सिर तथा शरीर के कपड़ों की ओर ध्यान ही न था। उनको पकड़ने की भी किसी में क्षमता नहीं थी, उनका समस्त शरीर नृत्य कर रहा था, इसी अवस्था में वह कीर्तन के स्थान पर जाकर गिर पड़ीं। जमीन पर पड़ते ही माँ का शरीर वायु के वेग से एक सूखे पत्ते की तरह ३०, ४० हाथ पर्यन्त इधर-उधर लोटने लगा। थोड़ी ही देर में पड़े-पड़े ही 'हरे मुरारे मधुकैटभारे' ध्वनि सुमधुर स्वर से युक्त हो माँ के मुख से निकलने लगी, मदमत्त की भाँति गद्गद हो माँ उठ बैठीं। दोनों आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। बहुत देर के बाद वे प्रकृतिस्थ हुईं। उस समय उनकी अपूर्व मुखश्री मधुर दृष्टि तथा गद्गद भाव देख सभी कह रहे थे, "पुस्तकों के महाप्रभु गौरांग के भावावेश के विषय में जो पढ़ा था वही आज माँ में प्रत्यक्ष देखा।" सन्ध्या को माँ फिर कीर्तन मण्डली में गयीं। दोपहर की भाँति ही भावावेश दिखाई दिया। कीर्तन मण्डली के साथ-साथ माँ घूमने लगीं, एक पैर के बल उद्दाम नृत्य करते-करते कुछ दूर गयीं फिर उनका शरीर जमीन पर गिर पड़ा। बहुत देर तक ऐसा ही चलता रहा, फिर माँ उठ कर बैठ गयीं। उस समय उनकी भाव-विभोर अधूरी बातें उपस्थित भक्त-मंडली के हृदय में अमृतरस का

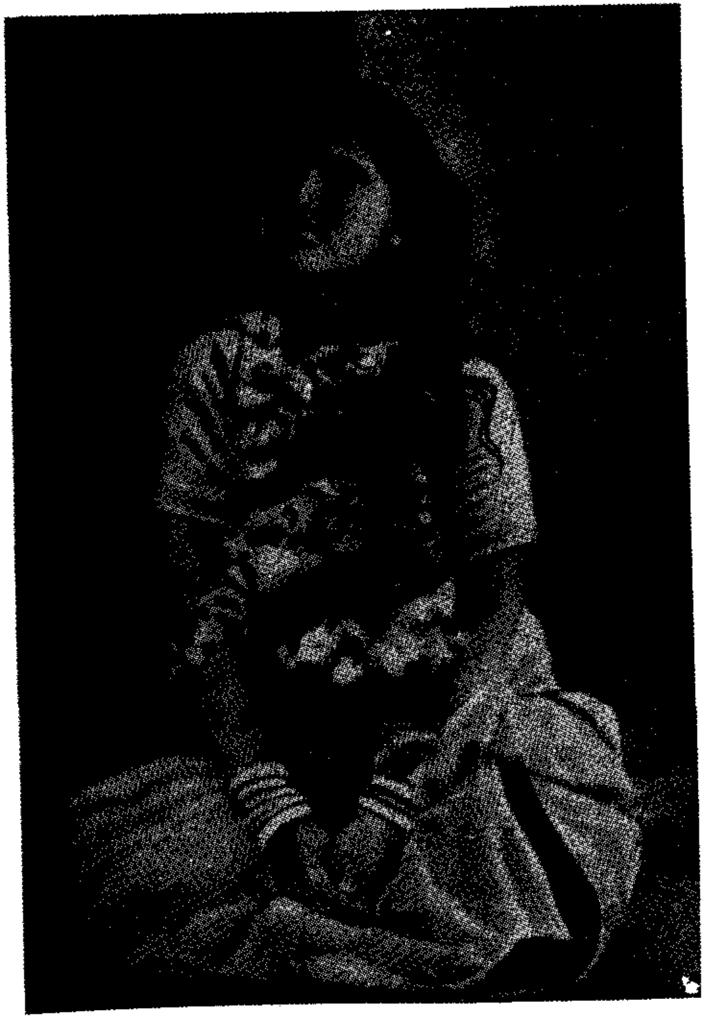

भावावस्था में माँ

सञ्चार कर रही थीं। समाप्ति के बाद माँ ने स्वयम् खिचड़ी प्रसाद वितरण किया। विपुल जनता में प्रसाद वितरण की क्षिप्रता, कौशल और अपूर्व मातृभंगी का दर्शन कर सबको ऐसा लग रहा था कि मानो स्वयम् महालक्ष्मी इस भूतल पर अवतीर्ण हुई हैं। श्री श्री माँ की उस दिन की लीला तथा संसार-दुर्लभ ऐश्वर्य की मूर्ति देख उपस्थित अनेक दिव्य-भाव से आविष्ट हो गये थे।

निरञ्जन कलकत्ते से इनकमटेक्स विभाग के असिस्टेण्ट कमिश्नर हो ढाका आये। एक शाम को हम दोनों अमावस के कीर्तन के लिए शाहबाग गये। कीर्तन आरम्भ होने के साथ ही साथ माँ का भाव भी बदलने लगा। जिस अवस्था में माँ बैठी थीं, उसी अवस्था में धीरे-धीरे सीधी होने लगीं और सिर क्रमशः पीछे की ओर मुड़कर पीठ से जा लगा। इसके बाद हाथ पैर मुड़कर धीरे-धीरे शरीर फर्श पर गिर गया। प्रत्येक साँस के साथ समस्त शरीर हिलने लगा तथा प्रत्येक ताल के साथ शरीर समुद्र की लहर की तरह जमीन पर लोटने लगा। प्रचण्ड हवा के झोंके से जिस प्रकार पेड़ का झड़ा पत्ता उड़ता पड़ता है, ठीक उसी प्रकार माँ का शरीर लोट-पोट रहा था, जो साधारण लोगों के लिए साध्यातीत है। सभी को ऐसा लगा मानो भाव-वश हो लीलामयी माँ ने संज्ञाहीन अवश शरीर को तैरा दिया है। सिर व शरीर के कपड़े की ओर तो कुछ ध्यान ही नहीं था। उनको पकड़ने की अनेक बार चेष्टा की गयी किन्तु सब विफल हुई। अन्त में माँ बहुत देर तक गम्भीर और स्थिर हो गयीं मानो किसी अखण्ड आनन्द रस में डूबकर जम गयी हों। माँ की मुखश्री दिव्यज्योति से चमक रही थी, सारा शरीर पूर्णानन्द से विभोर था। निरंजन माँ की इस

भावावस्था के प्रथम दर्शन ही से स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। मुझसे बोले "आज साक्षात् देवी का दर्शन हुआ।"

तत्पश्चात् एक दिन शाहबाग में कीर्तन के लिए अनेक व्यक्ति इकट्ठे थे, धीरे-धीरे कीर्तन हो रहा था। पूर्वोक्त अमावस की रात की भाँति ही माँ को भावावेश हुआ। किन्तु इस बार माँ बैठी ही बैठी धीरे-धीरे जमीन पर लेट गयीं और श्वास-क्रिया के साथ ही साथ हाथ-पैर फैला उलटी होकर लेट गयीं। अन्त में लहर की भाँति जमीन पर आन्दोलित होने लगीं। कुछ क्षण बाद सहसा उन्मादिनी सी ऊपर की ओर बिना किसी सहारे के उठने लगीं एवं बहुत देर दोनों एड़ियों के सहारे खड़ी रहीं। श्वास-प्रश्वास का वेग कुछ देर के लिए प्राय: स्थगित सा मालूम पड़ने लगा। दोनों हाथ आकाश की ओर ऊपर को उठे थे, दोनों एड़ियाँ जमीन को स्पर्श मात्र कर रही थीं, सिर पीछे की ओर झुककर पीठ से जा लगा था, अपलक दृष्टि से ऊपर की ओर देखती हुई चल रही थीं—कठपुतली जिस प्रकार किसी अदृश्य हाथ द्वारा चलती रहती है ठीक उसी प्रकार उनका विचरण था। उनकी दोनों आँखें बहुत उज्ज्वल थीं, मुख पर प्रसन्नता और हँसी थी। तनिक देर बाद ही दोनों पैरों के दोनों अगूठों का सहारा देकर कीर्तन के साथ ही साथ अपलक ऊर्ध्व दृष्टि तथा ऊर्ध्व हाथों से शून्य की ओर अग्रसर सी होने लगीं मानो समस्त शरीर की गति ऊपर की ओर खिंचती जा रही है। इसी अवस्था में बहुत सा समय कट गया। बाद में एक जगह आँख बन्द कर उसी भाव में जमीन पर पड़ गयीं। अन्य समय माँ का सिर सीधा रहता था किन्तु

उस दिन फिर ऐसा नहीं हुआ। संज्ञाहीन मांस-पिण्ड की भाँति शरीर पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह प्राय: १० बजे से माँ की अवस्था में अन्तर पड़ने लगा और संध्या को उनकी वही स्वाभाविक चेतना लौट आयी।

इसके बाद निरंजन के घर एक दिन कीर्तन हुआ। सभी, विशेषत: निरंजन की वृद्धा माता माँ का महाभाव देखने को उत्सुक थीं तथा मन ही मन प्रार्थना कर रही थीं कि भावमयी मातृमूर्ति के दर्शन भी उन्हे हों। जिस कमरे में कीर्तन हो रहा था, उसके पास वाले कमरे में माँ लेटी हुई थीं; सहसा माँ कीर्तन के कमरे में जा अलौकिक भाव से कीर्तन में योगदान देने लगीं और दोनों हाथ ऊँचे उठा कर प्रेमावेश से नृत्य करते-करते जमीन के ऊपर पड़ गयीं। उस दिन अपनी स्वाभाविक अवस्था में लौट आयीं किन्तु एकदम मौन हो गयीं।

इन लक्षणों के अतिरिक्त उनके शरीर के भाव इतने विविध प्रकार से प्रकट होते थे जिसका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। शरीर जब लोट-पोट होता था तो कभी लम्बा, कभी छोटा तथा कभी गोलाकार मांसपिण्ड के रूप में हो जाता था। कभी-कभी ऐसा लगता था कि शरीर में हड्डियाँ ही नहीं हैं। शरीर रबड़ की गेद की तरह जमीन पर लुढ़कता नाचता रहता था। उनकी देह की चलनभंगी बिजली की तरह इतनी तीव्र थी कि तीक्ष्ण सावधान दृष्टि द्वारा भी उसका अनुसरण नहीं किया जा सकता था।

ऐसे समय ऐसा प्रतीत होता था मानों यह देह श्री श्री माँ की नहीं है मानों कोई स्वर्गीय भाव का प्रवाह माँ के शरीर को

विगलित कर नृत्य कर रहा हो। शरीर उनका रोमांचित हो उठता, शरीर का वर्ण अरुण हो जाता तथा मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठता था। दैवीभाव के स्वतः प्रकाशित लक्षण उनकी देह सीमा में सीमातीत के अपूर्व रूप-माधुर्य का दर्शन कराते थे।

कभी-कभी उन्मत्त के समान ललित नृत्य कला मानों माँ के शरीर को भी अतिक्रमित कर अपूर्व रूप से चलती, कभी अतल सागर की सी निस्तब्धता तथा मौन शान्ति एकत्रित भक्तजनों के हृदय में अद्भुत भाव उदय करती तथा उनके हृदय की बहुमुखी गति को स्थगित प्राय-सा करा देती थी।

उस समय उनको देखकर ऐसा लगता था कि वे उपर्युक्त सभी विभूतियों से बहुत उच्च स्तर पर स्थित हैं, और वह सब भाव (विभूतियाँ) मानो किसी अदृश्य संकेत द्वारा उनके शरीर के भीतर स्वतः स्फुरित हो उठती थीं।

मैंने एक दिन माँ से पूछा, "जब आपको भावावेश होता है तब आपके शरीर में या आँखों के सम्मुख किसी देवी-देवता का आविर्भाव होता है क्या?" माँ ने कहा, "मेरा लक्ष्य कहीं भी केन्द्रित नहीं है। इसका मुझे कोई प्रयोजन भी नहीं है। तुम लोग भावावेश के लक्षण देखना चाहते हो, इसी कारण कभी-कभी इस शरीर में वह प्रकाशित हो जाते हैं। जब कोई कर्म पूर्णभाव से होता है तब उस कर्म की पूर्ण क्रिया (तद्रूपता) प्रकाशित होगी ही। नाम में तल्लीनता आते ही रूप-सागर में डुबकी लगा सकते हैं। नाम और नामी अभिन्न होने से बहिर्जगत् का भाव लुप्त हो जाता है और नाम की जो स्वप्रकाश शक्ति है वह आप से खिल उठती है।"

कीर्तन में जिस प्रकार माँ के शरीर की अवस्था अलौकिक हो जाती थी, माँ के मुख से सुना है कि जल, अग्नि, मिट्टी, पशु, पक्षी व किसी विशेष दृश्य आदि देखने पर कभी-कभी वे तद्रूप हो जाती थीं। हवा के झोंके देखने पर उनका शरीर भी कपड़े की भाँति उड़ हवा ही के साथ मिल जाना चाहता था। फिर किसी गम्भीर ध्वनि (जैसे शंख) को सुन उनका शरीर पत्थर की तरह स्थिर हो जाता था। श्री श्री माँ के ख्याल में जब भी किसी भाव की क्रीड़ा आती तो उसी के अनुरूप क्रिया होने लगती तथा समस्त देह में व्यापक रूप से प्रकाशित हो उठती।

एक बार बच्चों के हँसी-खेल में साथ देते हुए माँ ने जो हँसना शुरू किया तो एक घण्टे तक अनेक चेष्टा करने पर भी वह रुकीं नहीं। दो-एक मिनट चुप हो जातीं फिर हँसना आरम्भ कर देतीं। बैठी एक भाँति ही रहीं किन्तु मुख और नेत्रों में असाधारण भाव था। सब लोग यह अवस्था देख डर गये। पीछे अपने आप ही प्रकृतावस्था में आ गयीं।

एक बार माँ ढाका से कलकत्ते जाने लगीं। स्टेशन पर लड़के-लड़कियाँ, स्त्री, पुरुष दर्शन के लिए आये और उन्होंने रोना आरम्भ कर दिया। माँ ने भी उन लोगों के साथ योग देते हुए समस्त अंगों को उलट पुलट करते हुए जो रोना शुरू किया तो उन्हें चुप कराना ही कठिन हो गया। स्टेशन पर जो अन्य लोग थे वे कहने लगे शायद लड़की बाप के घर से बिदा हो रही है। वह रुदन १२ बजे जो शुरू हुआ तो संध्या तक धीरे-धीरे कम हुआ।

एक दिन माँ ने मुझसे पूछा, तुम लोगों के हँसने, रोने का केन्द्र, कहाँ है?" मैंने बताया कि यद्यपि हँसने-रोने का प्रवाह तो

मस्तिष्क ही से उद्‌भूत होता है किन्तु केन्द्र हृदय ही है। माँ ने कहा, "नहीं, यदि हँसने-रोने में प्रकृत भाव हो तो उसका प्रकाश सर्वाङ्ग में ही होता है।" मैं इस बात का मतलब नहीं समझा, चुप हो रहा। कुछ दिन बाद एक दिन बहुत सबेरे आश्रम गया। माँ से मिलने पर पूछा, खू.....ब.....अ....अच्छी हूँ.... ।" इस बात से तीव्र स्पन्दन से मैं चलते-चलते रुक गया, मेरे सिर से पैर तक एक अद्‌भुद भाव नाच उठा। यह देख माँ बोलीं, "क्यों रे ! समझा, हँसी का केन्द्र यहाँ है ? शरीर के किसी भी अंग में कोई भाव केन्द्रित रहे तो उसे पूर्ण भाव नहीं कह सकते।"

श्री श्री माँ के मुख से ही सुना है कि जब साधक एकाग्रचित्त हो ईश्वर का ध्यान करता है तब बाह्य जगत् के विपरीत भाव स्पन्दन उसकी भावधारासे टकरा कर वेदना उत्पन्न करते हैं। ऐसे समय पशु पक्षी वृक्ष लता तक का आघात होने से उसका स्पन्दन साधक के मन को व्यथित कर देता है। दूसरों के कलह और आनन्द उत्सवादि की तरंगें भी ईश्वर योग तल्लीनता में आघात पहुँचाती हैं।

जब तक साधक के बहिर्जगत् के संस्कार प्रबल रहते हैं तब तक उसे ऐसा लगता है कि उसकी ज्ञानेन्द्रियों से सम्बद्ध सभी कुछ उसके 'अहंभाव' के ही अन्तर्गत है। इसलिये पेड़ का एक पत्ता गिरने से भी उसका चित्त उसके स्पन्दन से काँप उठता है। श्री श्री माँ के स्वयं प्रकाशित कर्मों के प्रथम उन्मेष के समय भी उनमें उसी के अनुरूप भाव के प्रकाश की बात सुनी गयी है।

महाभाव के बाद श्री श्री माँ जब अपनी प्रकृतावस्था में आ जाती थीं तब उनके शरीर में अनेक प्रकार की योगक्रियाएँ

स्वयं प्रकाशित हो उठती थीं। उस अवस्था में उनके शरीर से पहले एक अस्पष्ट ध्वनिगुञ्जन सुनाई पड़ता था। इसके कुछ देर बाद आँधी के तीव्र थपेड़ों से आन्दोलित समुद्र के तरंग-प्रवाह के समान छन्दोबद्ध देवभाषा में स्वयं प्रकाशित सत्यवाणी अत्यन्त मधुरता के साथ अविरल बह निकलती, तब ऐसा प्रतीत होता मानो महाव्योम की समस्त रागरागिणियों की अपूर्व झंङ्कार ले सत्य का स्वरूप वाणी रूप में मूर्तिमय हो उठा है। इतना विशुद्ध उच्चारण, स्वरचित छन्दों का ऐसा मर्मस्पर्शी प्रवाह, उनके मुख की ऐसी निर्मल पावन ज्योति हजार चेष्टा तथा तपस्या करने पर भी पण्डितवर्ग ला सकें, इसमें सन्देह है।

इस स्वत: प्रकाशित वाणी का अर्थ गौरव देख विद्वन्मण्डली भी स्तम्भित हो गयी। वह भाषा सबकी समझ में नहीं आ सकती इस कारण लिपिबद्ध करना असम्भव है। इस प्रकार के केवल चार सूक्त इस अध्याय के अन्त में दिये गये हैं।

इनके संशोधन के लिए एक बार मैंने माँ से कहा था। उन्होंने कहा "यदि होना होगा तो समय आने पर हो जायगा, इस समय तो कुछ ख्याल में नहीं आ रहा है।" परवर्ती चार सूक्तों में से एक का अर्थ कुछ वैदिक भाषा के पण्डितों ने किया था, वह उसके नीचे पादटीका में दिया है।

इस एक सूक्त के अर्थ से प्रतीत होता है कि श्री श्री माँ की भावमयी देह ने जगत् के कल्याण, शान्ति और उन्नति के लिये वाणी रूप में आत्मप्रकाश किया है। अपने प्राणों का पूर्ण आवेग संसार-ताप-नाशक करुणा-स्निग्ध जननी का वात्सल्य जीव-

हित के लिए विश्व भर में विस्तार कर वह विश्वजननी के रूप में विराज रही हैं ।

इन सब सूक्तों के प्रसंग में माँ से सुना है "शब्द ही जगत् का आदि कारण है, नित्य शब्द व सद्वाणी के क्रमविकास और विवर्तन के साथ ही साथ सृष्टि का विकास और विवर्तन होता चलता है ।" ऐसे समय माँ की वाणी कभी तीक्ष्णधार की तरह पैनी और तीव्र, कभी संध्या की समुद्री वायु की तरह स्निग्ध, कभी पूर्णिमा की मध्यरात्रि के समान गम्भीर और प्रशान्त है । इसके साथ ही साथ उनकी दृष्टि तथा मुखभंगी में भी भावविकास के अनुसार परिवर्तन होता चलता है ।

कभी-कभी इन सूक्तों के स्फुरण के साथ उनका अविरल अश्रुविमोचन, अलौकिक उज्ज्वल हास्य की दीप्ति अथवा बादल और धूप की आँखमिचौनी की तरह हँसने और रोने का भाव उनकी करुणामयी मूर्ति को स्वर्गीय विभूति द्वारा दिव्य और मधुर बना देता था । इन सब वाणियों के प्रकाश के बाद माँ अनेक क्षण मौन रह कर धीरे-धीरे अपनी स्वाभाविक अवस्था में आती थीं, किसी-किसी दिन तो बिलकुल निश्चल तथा निस्पन्द-सी पड़ी रहती थीं[१] ।

एहि भावनायं भायं एहि यं सं तानि तायम्
भावमयं भवभयहरणं हे ।
यस्मिंस्त्वहं भाग पौं हं वां ह्रीं आं हे
भां हां हिं हौं हं हीं वं लं यं सं त्वम्

१. श्री श्री माँ के भावोन्माद का एक चित्र इस अध्याय में है ।

तादरौ भाग सं वं लं हे देव भक्तमयं मम हे
स त्वं हि हं यं वं वायं कं भावभक्ति ...... भावमयं हे ।
महात्मायं भवभयं हर हे
दैवतं मयं मे सं तं ह्रीं मत्तस्त्वम् भवोऽयम्
यस्तानि त्वं तारणमयम् भवभयनाशं भावय हे
स्वभावशरणगतम् प्रणवजासनम्
भवानीभवं भवभयनाशनं हे,
हरशरणागत .... तायं
विभावत ममायनं हे ।
यस्तारणं तत्र द्वयरूपं मयाहि सर्वाणि स्वरूपमयानि
मयाहि सर्व मयाहि सर्वशरणं हे ।
दास नित्य .... प्रणवश्रुतकारणं
महामाया महाभावमय मय हे ।
मम भो भक्तौ तरणं मा मम सर्वमयं हे
यस्या रुद्ररुद्र त्वं प्रणवे रां ॠं कृतकारणं रुद्रं नौमि ।
प्रां वां हां सां आ हिं अं
भावमयं हे .... संसृष्टः केशवः ।।[१]
नामः स्मरणं सर्व्वः छत्तम्,

१. इस स्तोत्र में व्यवहृत कुछ प्रचलित बीजमन्त्रों का अर्थ यहाँ दिया जाता है । इस स्तोत्र को हिन्दी तथा संस्कृत व्याख्या "मातृदर्शनम्" नाम से श्रीमान् सोलन-राजपण्डित महामहोपाध्याय मथुराप्रसाद दीक्षित जी ने प्रणयन की है । यह पुस्तक काशी आश्रम में मिलती है ।

(२)

सविनय मय भवत:
य समेदनामं सर्व भूतेसी समन्वये:
सर्वं स्वरूपे नित्यं अनित्यं मम: ।
स्वम्भवया न सिंहं, शंकर सविस्मये नम: न स्वयम्;
न: मिव भवसिंहं संचित मादने स्वय स्मिति स्मृति;
र विपरनमं भव: तमाहम् ।
माया विभित मादने छरने में स्वहम्
छ पिपातने मातंगं साहारणम्
रंजितं शोभिवत: मिजने जानम्
र तिन वेत्त: वेदनं मिदाहनं स्वपिप सार नमे:
छ तिन माहं स्वपिपा सनमम्
रोग कान्ति तिन में स्वहम्
य: विव मातये: ।

लं—पृथ्वी, विमला, वेदार्थसार, नारायण ।

यं—वायु, काली, पुरुषोत्तम, चामुण्डा, युगान्तश्वसन ।

वं—वरुण, विष्णु ।

तं—हरि ।

अं—आकाश, सर्वेश ।

आं—नारायण, अनन्त ।

सं—हंस, अगद्बीज, सोहम्, परमात्मा ।

(३)

यं तारिणी यत् सवे सम यौ तिपारितं हस्ते संस्ते जगम् ।
रूपादित्यं करुणे रौद्रस्य रूपकारस्मि छन्ते निमित नमं ।।
आ: इ: उ: हं सं रं लं यं सं हं हं ॠं क्रीं अं गं गं गं ।
रां रां रां रोम् रोम् रोम् । द्रवे दित्यं शान्त शिषेस्ये स्थानित्यम् ।।
रिपु कारणं महामाये आलक्तिललं गा: गि: सं स्तेजस्मि ।
अग्ने पित केन्तनं आं दं पिं आ: स: वित्रदय न: सौ: रिती: ।।
अं, शं, सां, ह्रां, ह्रां ...... ह्रीं ह्रीं धनमेदित्य: अहम् स्ते जगम् ।।
आं आं इं ईं ...... ॐ स्तेजस्य स्वर वर्णेषु शान्ति सेवतं इत्व निराहारम् ।।

हं—परमात्मा, हंस, शिव ।

हौं—प्रसादाख्य शिवबीज ।

ॠं—रुद्र, महारौद्री ।

कं—महाकाली, कामदेव, वासुदेव, अनन्त ।

क्रीं—शक्तिबीज, कालीबीज ।

ह्रीं—ताराबीज, भुनेश्वरीबीज, मायाबीज ।

भां—अनन्त विश्वमूर्ति ।

२० वैशाख, १३३६ बंगाब्द में श्री श्री माँ आनन्दमयी नव प्रतिष्ठित रमना आश्रम में २४ घण्टे मात्र ठहरकर हठात् भक्तों से विदा लेकर एक वस्त्र से निकल पड़ीं । उस समय भावावेश में स्वत: ही एक स्तोत्र माँ के श्रीमुख से निकला । उस स्तोत्र के कुछ अंश दुहराने पर माँ ने लिखने की अनुमति दी थी । किन्तु आवेशजड़ित कण्ठ से निर्गत उस स्तोत्र का थोड़ा ही अंश लिखा जा सका

समिदे: यं पुराणिता अन्ये पे ऋक् ॐ अर निरात्रित्वं यशमेदि पुराणे लभिदा दमने दात्तां रक्षकं मया सितं जनमे शान्ति स्वरूपिणी विद्या रुद्रात्तनमे अन्नपूर्णा सन्निदत्ता यशवेदा विह्वलां स्मरणे स्मरणान्वितं ॐकारस्य समेशं यस्त्वात्तनमे क्रीं रम् ।

शान्ति अभवा विभूषितम् !!!

और जो भी लिखा गया है वही ठीक है, यह भी नहीं कहा जा सकता । उन्होंने इस असम्पूर्ण तथा भ्रमपूर्ण स्तोत्र को कीर्तन से पहले बाजे पर गाने की अनुमति दी थी । नीचे उस स्तोत्र का मर्म्मानुवाद यथासम्भव दिया गया—

तुम ज्योति स्वरूप, विश्व के भावनायक, तुम आविर्भूत हो । तुम ही से समस्म सृष्टि जाल फैला हुआ है, तुम्हीं भवभय-हारी हो, तुम अवतीर्ण हो जाओ । तुम सृष्टि के बीजरूप हो, तुम्हीं वह आदि पुरुष हो जिसमें मेरी स्थिति है । ये जो मेरे भक्त हैं उनमें भी तुम ही विराजित हो । तुम को प्रत्यक्ष देख रही हूँ, तुम भवभय हरण करो ।

हे सब देवमय ! मुझमें ही तुम तथा मैं ही विश्वजगत् हूँ । जो तारणमय इस समस्त सृष्टि का अधिष्ठान है उसी भवभय नाशकारी का ध्यान करो तुम नित्य अपने ही भाव में स्थित हो । प्रणव अर्थात् वेदों के तुम्हीं प्रतिष्ठा हो । तुम समरसस्वरूप नाद-विन्दुरूप कामकामेश्वरीरूप दिव्य मिथुन हो । तुम भव-भय का नाश करो । मैं तुम्हारी शरणागत हूँ, तुम्हीं मेरे आश्रय हो, तुम मुझे अपने में आकर्षित कर लो । तारक के रूप में तुम्हारे दो रूप हैं—मोक्षदाता तथा मोक्षकामी जीव । मेरे ही द्वारा सबका स्वरूप है । मुझसे ही सब तथा मुझमें ही सब प्राणियों की प्रतिष्ठा-भूमि है । मैं ही प्रणवोपदिष्ट कारण हूँ, मैं ही महामाया और महाभावमय हूँ । मेरी भक्ति ही मुक्ति का हेतु है । सभी मेरे हैं । मेरे द्वारा ही रुद्र का रुद्रत्व अर्थात् शिव का शिवत्व है वही मैं कार्यकारणात्मक शिव की स्तुति करती हूँ ।

ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति
श्रद्धार्थनं शंकट उवाच
नैसृंह उग्गता नमे
नरो रूप भ्रमन्वये:
संस्तिचं भ्रूतपा: महत् मायायाम्
ष्टसना रुद्रं पियास्व मे ।[१]

●

---

१. जब मैं सहसा ही आकुल तथा व्याकुल हो छटपटाया करता था तब सहसा एक दिन माँ के श्रीमुख से यह श्लोक नि:सृत हुआ । सुबह-शाम इसको पाठ करने का आदेश मिला ।